आनन्द भाई और निर्मला माँ को उपलक्ष्य करती हुई श्री श्री माँ का हम लोगों को उपदेश देना

आज नये भक्तों के आगमन से हमारे दल की संख्या बढ़ गयी थी । भीड़ अधिक होने के कारण कीर्तन की व्यवस्था नहीं हुई । इसका कारण यह है कि कीर्तन होने पर निर्मला माँ और विमला माँ भावावेश में आ जाती है । कहा जाता है कि उस अवस्था में काफी कष्ट होता है । शायद इसीलिए आनन्द भाई कीर्तन का विरोध करते हैं । फलतः कमरे में बैठकर केवल बातचीत होती रही ।

कुछ दिन पहले निर्मला माँ जमशेदपुर स्थित कुछ भक्तों के काफी दिनों से अनुरोध करने पर वहाँ गयी थीं । वहाँ हुए कीर्तन में आपको भावावेश हुआ था । आनन्द भाई ने उक्त घटना का उल्लेख करते हुए कहा–निर्मला माँ को फटकारते हुए कहा था कि अब भाव दिखाकर घूमने की जरूरत नहीं । उनकी बातों में व्यंग्य का पुट था, इसलिए निर्मला माँ जरा दुखित हुई । उपस्थित सभी लोगों ने अनुभव किया कि आनन्द भाई का फटकारना अयथार्थ और बेमौके का है । इधर निर्मला माँ के पति निर्विकार भाव से बैठे रहे । उपस्थित व्यक्तियों में त्रिगुणा बाबू यद्यपि रूढ़ नहीं, पर स्पष्टवक्ता हैं । उन्होंने संयत भाषा में अपना वक्तव्य इस ढंग से दिया कि आनन्द भाई भी समझ गये कि निर्मला माँ के पति हेम भाई की मौजूदगी में उनके (निर्मला माँ के) बारे में कुछ भी कहना, एक प्रकार से अनधिकार चर्चा है । अबतक जो वादानुवाद हो रहा था, इस ओर श्री श्री माँ का ध्यान नहीं था । वे नीरव भाव से पाषाण मूर्ति की तरह बैठी रहीं । लेकिन ज्योंही त्रिगुणाबाबूने आनन्द भाई के प्रति अपनी बातें समाप्त कीं, त्योंही माँ ने आपत्ति प्रकट करते हुए त्रिगुणा बाबू से कहा कि ये आनन्दभाईसे इसके लिये क्षमा माँग लें । त्रिगुणा बाबूने ऐसा ही किया । वादानुवाद यही रुक गया और आनन्द भाई सोने चले गये । निर्मला माँ के सोने का प्रबन्ध माँ के बिछावन के पास हुआ । वे सो गयी । हेम भाई भी सोने चले गये ।

आनन्द भाई जब सोने चले गये तब माँ ने अवनी बाबू से कहा– "क्यों पिताजी, आज तुम कीर्तन करोगे, कहते थे ?"

अवनी बाबू–हाँ, माँ।

माँ–कब करोगे ?

अवनी बाबू ने कहा–बस, कर रहा हूँ ।

इतना कहने के बाद उन्होंने कीर्तन करना प्रारम्भ किया । कीर्तन चलता रहा । कीर्तन की आवाज सुनते ही आनन्द भाई आये और माँ के पास बैठ गये । माँ बिना कुछ बोले कीर्तन सुनती रहीं । अवनी बाबू क्रमशः स्वर तेज करते गये और रह रहकर निर्मला माँ की ओर देख लेते थे । आनन्द भाई की आकृति गंभीर हो गयी । कुछ देर कीर्तन होने के बाद निर्मला माँ सिसक–सिसक कर रोने लगीं । यह दृश्य देख आनन्द भाई गुस्से से लाल–पीले होकर कमरे से बाहर चले गये । तुरत कीर्तन बन्द हो गया । माँ अवनी बाबू को दोष देने लगीं।

अवनी बाबू–मैंने क्या किया ? तुमने तो मुझे कीर्तन करने को कहा ।

माँ–मैंने तुम्हें धीरे–धीरे करने को कहा था । तुम क्रमशः स्वर तेज करते गये, आखिर क्यों ? इसके अलावा निर्मला माँ को तुम एक बार भावावेश में देखना चाहते थे, इसीलिए कीर्तन करते समय निर्मला की ओर बराबर गौर कर रहे थे कि तुम्हारे कीर्तन का कितना असर उन पर हो रहा है । माताजी को इस स्थिति तक लाने के लिए तुम उच्चस्वर तक पहुँच गये थे ।

माँ की बातें सुनकर हम लोग हँसने लगे । बड़ी मजेदार बात रही । माँ स्वयं अवनी बाबू से कीर्तन करने की आज्ञा देकर इस वक्त डाँट रही हैं । यह डाँट, माँ की डाँट रही इसमें तिक्तता जरा भी नहीं थी ।

मां की डाँट सुनकर अवनी बाबू रोने लगे । यह दृश्य देखकर हम लोग हँसना भूल गये । तभी निर्मला माँ को इस कमरे से हटाकर दूसरे कमरे में ले जाया गया ।

माँ हम लोगों से कहने लगीं – "सुनो, आनन्द पिताजी नाराज हुए हैं । इसमें उनका दोष नहीं हैं । यह तुम लोग देख ही रहे हो कि वे निर्मला मां से कितना स्नेह करते हैं । कीर्तन में निर्मला मां का शरीर खराब हो जाता है, इसीलिए कीर्तन करने के पीछे उनकी आपत्ति है । वह माँ से स्नेह करता है और स्नेह के अधिकार को लेकर इस तरह की बातें करता हैं तथा उसकी गतिविधि को नियंत्रित करना चाहता हैं । तुम लोगों को यह सब देखकर दुःख होता है, पर ऐसी बातों में कुछ कहने के पहले तुम लोगों को सोचना चाहिए कि तुम लोग किस अधिकार से ऐसी घटनाओं में दखल दे रहे हो। बिना सोचे–विचारे बात कहने पर लज्जित होना पड़ेगा । ऐसे मौके पर तुम्हें यह सोचना होगा कि यह सब भगवान् की लीला हैं । उन्होंने एक व्यक्ति के भीतर धर्मभाव जगाया है, दूसरी ओर वे ही एक व्यक्ति के माध्यम से बाधा उत्पन्न कर रहे हैं ।"

एक भक्त – माँ अगर कोई हमारे गुरु की निन्दा करे तो हमे क्या करना चाहिए ?

माँ – निन्दा सुनने पर चुप रहना ही अच्छा है । उस वक्त यही सोच लेना चाहिए कि गुरु इच्छा से मैं उनकी निन्दा सुनने को बाध्य हुआ हूँ । इससे धैर्य बढ़ता हैं ।

नाम से ही हठयोग होता है

इसके बाद श्री श्री माँ निर्मला माँ की अवस्था की व्याख्या करने लगीं – "कीर्तन सुनने के बाद माँ के शरीर में विकार आरंभ हो जाता हैं । शायद कलेजा टूटकर चूर–चूर हो जाता हैं । यह हठयोग के लक्षण हैं । साधना की प्रथम स्टेज पर ये सब विकार होते हैं।

बाद में यह सब नहीं होता । सुना होगा कि हठयोग का अभ्यास करते हुए नाना प्रकार के आसन के द्वारा शरीर को नाना प्रकार से विकृत करते हैं । साधना की प्रथम अवस्था में नाम के प्रभाव से हठयोग की यह सब क्रिया अपने आप शरीर में हो जाती हैं । कीर्तन या नाम ध्वनि सुनते ही शरीर विकल हो उठता है । शरीर में भयंकर कष्ट होता है । इस समय कीर्तन सुनना कष्टदायक हो जाता है । दूसरी ओर कीर्तन बन्द कर देने पर यह दर्द और भी कष्टदायक बन जाता है । सुना होगा कि माताजी कह रही थीं–"कीर्तन सुनने पर खूब कष्ट होता है, पर इतना मधुर नाम है कि बिना सुने रहा नहीं जाता । इससे मेरा दर्द बढ़ जाता हैं ।' जब ऐसी हालत हो जाय तब धैर्य धारण करना चाहिए । इसी को कहते तपस्या । इसीलिए तपस्या को मैंने 'ताप–सहा' (ताप सहना) कहती हूँ । नाम–ध्वनि सुनने पर भी अगर धैर्य धारण कर कुछ दिनों तक नाम–गायन सुना जाय तब वह यंत्रणा नहीं होती ।"

इन बातों को माँ नाना ढंग से समझाती रहीं । रात के ३ बज चुके थे यह देखकर मैं सोने चला गया ।

गंगा को फल–दान

२९ दिसम्बर, सन् १९३६ ई. मंगलवार । आज सवेरे माँ गंगा की ओर टहलने जायेंगी, यह इच्छा प्रकट कर चुकी हैं । हम लोग माँ के साथ चल पड़े । चार नावें किराये पर ली गयीं । आज नाव पर भोजन की व्यवस्था नहीं की गयी थी । कुछ देर तक घूमने के बाद माँ चली आयेंगी, ऐसा उन्होंने कहा था । शची बाबू कलकत्ता से माँ के लिए काफी फल ले आये थे । एक दौरी फल नाव पर ले आया गया था । चारों नाव एक साथ बांधकर आगे बढ़ाने के लिए कहा गया । प्रातःकाल के सूर्य की किरणें छोटी–छोटी तरंगों के बीच नृत्य कर रही थीं । ऊपर नीलाकाश, नीचे स्वच्छ सलिला,

कलुषनाशिनी जाह्नवी और बीच में खड़ी है शरदिन्दु निभानना, श्वेतवसना, आलुलायित कुंतला, चिदानन्द स्वरूपिणी, चिरहास्यमयी हमारी मां। यह एक अद्‌भूत दृश्य था। भक्तगण तन्मय होकर सुमधुर स्वर में कीर्तन कर रहे हैं। नवद्वीप के घाटों पर नहानेवाले दर्शक यह दृश्य देखकर मुग्ध हो चित्रार्पितों की तरह हमारी ओर देख रहे हैं। उन लोगों को इस तरह देखते देखकर मां आनन्दित हो उठीं।

फल देकर माँ को भोग दिया गया। मां ने कहा कि शची बाबू जितने फल लाये हैं, उनमें से एक–एक गंगा को दे दो। उसे किस ढंग से चढ़ाया जाय, यह भी बताया। शची बाबू एक–एक फल अंजलि की तरह दोनों हाथों से जैसे यज्ञ में आहुति दी जाती है, ठीक उसी प्रकार गंगा में अर्पण करने लगे। संतरा, सेब, अमरूद आदि गंगा में तैरने लगे। कीमती फलों को इस तरह बहते देख माझी अपने आपको रोक नहीं सके। वे सब उसे पकड़ने के लिए लपके। मां ने उन्हें पकड़ने को मना किया और देर तक बहते हुए फलों की ओर देखती रहीं।

नौका पर ही हम लोगों ने प्रसाद ग्रहण किया। विमला मां, निर्मला मां हमारे साथ थीं। कुछ देर तक नाव पर घूमने के बाद मां धर्मशाले में चली आयीं।

पिछली रात को निर्मला मां और आनन्दभाई में कचकच होने के कारण मेरे मन में एक प्रश्न उठ खड़ा हुआ था। मां से उस बारे में पूछने के लिए अवकाश खोज रहा था। धर्मशाला जाकर मैंने मां को जब अकेला पाया तो पूछा – "मां, अन्तर में जब धर्म–भाव जागृत होता है तब धर्म–भाव विकास के मार्ग में जितनी बाधाएँ आती हैं, क्या वे सब आकस्मिक हैं या ऐसा होना साधना–जगत् के नियम हैं?"

मेरा प्रश्न समाप्त हुआ और तभी आनन्द भाई आ गये। मां ने कहा – "इस वक्त तुम्हारे प्रश्न का उत्तर नहीं दूँगी। किसी और समय पूछ लेना।"

धर्मशाले के बाहर बरामदे पर आकर मां बैठ गयीं। तरह तरह की बातें होती रहीं। ठीक इसी समय श्रीयुक्त शची बाबू बाबा भोलानाथ द्वारा भेजा गया एक तार लेकर आये और मां से कहा – "मां, भोलानाथजी अस्वस्थ हैं। तार भेजा है। इस वक्त क्या करना चाहिए?"

मां – तुम लोगों ने भोलानाथ के पास जो पत्र भेजा है, उसे न पाकर शायद यह तार भेजा है। उस पत्र का उत्तर आता है या नहीं, यह देख लो।

शची बाबू – परदेश में अस्वस्थ होकर बाबा ने तार भेजा और हम लोग चुप होकर बैठे रहें। क्या हम लोगों को तार नहीं भेजना चाहिए?

मां – परेशान होने की जरूरत नहीं। यह ठीक है कि तुम लोग जो उचित समझो करो।

मां ने इन बातों को इस ढंग से व्यक्त किया जैसे भोलानाथ इनका कोई नहीं है। वृद्ध दादा महाशय और दीदी मां भी भोलानाथ के साथ थे। उनके लिए मां ने उद्वेग प्रकट नहीं किया। मां का निर्लिप्त भाव गौर करने लायक है। लेकिन हम लोग दुर्बल मन के हैं, मां का यह निर्लिप्त भाव हमारी बेचैनी को बढ़ाता है। शची बाबू ने एक जवाबी तार भेजा। तीसरे पहर जवाब आया कि भोलानाथ ठीक हैं।

नवद्वीप से निर्मला का विदा होना

आज तीसरे पहर चार बजे निर्मला मां और हेम भाई चले जायेंगे। कल ही चले जाने की इच्छा हेम भाई प्रकट कर चुके थे। पर मां ने रोक लिया था। अगर कल वे लोग चले जाते तो रात वाली घटना न होती। नवद्वीप में शेष समय मौज से कट जाते। लेकिन मां की इच्छा दूसरी है। मुझे ऐसा लगा जैसे मां ने स्वयं ही हम लोगों में झगड़े की सृष्टि की है और उसी को उपलक्ष्य बनाकर उपदेश दे रही हैं। नवद्वीप आकर इस बार मैंने मां की यही लीला देखी।

आज दोपहर को श्री श्री मां ने निर्मला मां से कहा–"माताजी, आज तुम मुझे एक गीत सुनाओ।"

निर्मला मां ने कहा – "मैं अपनी इच्छा से गीत नहीं गा पाती। मेरा गायन अपने आप हो जाता है। जब गाने की इच्छा होती है तब उसे दबा नहीं पाती। दूसरी ओर अगर कोई गाना सुनना चाहता है तो गा नहीं पाती।"

मां ने कहा – "मुझे एक गीत सुनाना ही पड़ेगा।"

निर्मला मां चुपचाप बैठी रहीं।

लगभग तीन बजे मां ने लोगों से कहा कि सभी लोग तैयार हो जायें। देवालय जाना है, मेरे साथ। निर्मला माँ को बुलवाया गया। कुछ देर बाद देखा गया कि धर्मशाला के प्रांगण में चहलकदमी करती हुई वे गा रही हैं। यह एक अद्‌भुत दृश्य था। भाव से मुँह आत्मविभोर, दोनों आंखों से आंसू ढलक रहे हैं। दोनों हाथ ऊपर की ओर उठाकर संगीत की ताल पर गद्‌गद भाव से गा रही हैं –

श्रीकृष्ण चैतन्य प्रभु नित्यानन्द।
हरे कृष्ण हरे राम श्री राधे गोविन्द॥

इस तरह का मधुर संगीत सुनने से पाषाण भी पसीज जाता है। इस गीत को सुनने के बाद ऐसा लगा जैसे कभी गौरांग देव नवद्वीप के द्वार–द्वार इसी तरह गाते हुए नगरवासियों को पागल बनाते रहे। जिन लोगों ने निर्मला माताजी का गीत सुना, उनकी आंखों में प्रेमाश्रु छलक उठे। किसी की जबान नहीं खुली। श्री श्री मां प्रसन्न भाव से निर्मला मां को देखने लगीं।

निर्मला मां आगे गाने लगीं –

जय राधे राधे कृष्ण कृष्ण
हरे कृष्ण हरे हरे।
ए नाम बल बदने सुनाओ काने।
बिलाओ जीवेर द्वारे–द्वारे।

इसी तरह गीत गाती हुई वे धर्मशाला के बाहर निकलकर गंगा की ओर चल पड़ीं। हम लोग भी उनके पीछे–पीछे चल पड़े। तीसरे पहर की हिमसिक्त हवा में गंगा तट से आती हुई इस दिव्य संगीत की ध्वनि हमारे कानों तक पहुँचने लगी। जाह्नवी के किनारे से क्षीण से क्षीणतर संगीत की ध्वनि आती रही –

ए नाम बल बदने सुनाओ काने।
बिलाओ जीवेर द्वारे–द्वारे।

सभी के चेहरे पर उदासी छा गयी। लगा जैसे त्रिदिव का एक दृश्य चलचित्र की तरह हमारे अश्रुसिक्त आँखों के सामने प्रकट होकर गायब हो गया।

गंगा घाट से निर्मला माँ नाव से स्टेशन जायेंगी और वहीं से बहरमपुर रवाना होंगी। निर्मला माँ के सलज्ज और नम्र स्वभाव से हम लोग मुग्ध हो गये थे। उन्होंने जिस ढंग से विदा ली, उससे हमारे मन में आदर की गहरी रेखा अंकित हो गयी। जब भी निर्मला माँ की याद आती है तभी उनके चरणों में श्रद्धा से मेरा सिर झुक जाता है। शुद्ध वस्तु का आकर्षण–बोध शायद इसी तरह होता है।

निर्मला माँ के जाने के बाद माँ ने हम लोगों से कहा –"इसके (निर्मला माँ के) गीत के साथ तुम लोगों ने साथ नहीं दिया। अगर उसका साथ देते तो अपूर्व बात देख पाते।"

जो होने को नहीं है, वह नहीं हुआ। उसे लेकर दुःख प्रकट करने से कोई लाभ नहीं। लेकिन जो कुछ देखा और जो कुछ सुना, वह मेरे पूर्व जन्म के पुण्य फल के कारण प्राप्त हुआ है।

ललिता सखी और श्री श्री माँ

शाम होने के कुछ पहले माँ सभी लोगों को साथ लेकर धर्मशाला से बाहर निकलीं। धर्मशाला से कुछ दूर "समाजबाड़ी" है। माँ समाजबाड़ी के भीतर गयीं। सदर दरवाजे से भीतर प्रवेश करने पर दाहिनी ओर एक बृहत् नाट मंदिर है। नाट मंदिर में एक पण्डितजी बैठे पाठ करे रहे थे। बाहर कुछ श्रोता बैठे हुए थे। श्री श्री माँ नाट मंदिर के भीतर न जाकर बाहर कुछ देर तक खड़ी रहीं। बाद में नाट मन्दिर से आगे बढ़ गयीं। कुछ दूर जाने पर देखा – एक मोटी महिला ने जो कि पंजाब की रहनेवाली मालूम पड़ती थी, पास आकर माँ को प्रणाम किया। उनकी वेष–भूषा से ऐसा लगा जैसे आप ही इस मन्दिर की मालकिन हैं। उक्त महिला माँ को प्रणाम करने के बाद हम लोगों को एक दालान के बरामदे में ले गयीं और वहाँ बैठने के लिए आसन दिया। मैं उक्त महिला के निकट बैठा। तब उसका चेहरा गौर से देखने का अवसर मिला। अच्छी तरह मुँह देखने तथा गले की आवाज सुनकर समझते देर नहीं लगी कि अबतक जिसे महिला समझ रहा था, वे महिला नहीं, पुरुष हैं। सखी भेष में श्रीकृष्ण की साधना कर रहे हैं। तभी मुझे ललिता सखी की याद आ गयी और समझ गया कि इस वक्त हम लोग ललिता सखी के कुञ्ज में आये हैं।

हम लोग जब ठीक से बैठ गये तब ललिता सखी ने श्री श्री माँ से पूछा – "माँ, मैं तुम्हारे प्रति रूठ गया था। आज सेवेरे न जाने किसने आकर कहा कि तुम नवद्वीप से चली गयी हो। तुम बिना मुझसे मिले चली गयी, यह सुनकर मुझे बड़ा दुःख हुआ। मैं तुमसे रूठकर बैठा रहा। इसके बाद तुम्हारे बारे में किसी से कुछ नहीं पूछा।"

माँ – तुम रूठ गये हो जानकर ही तो आयी हूँ।

ललिता सखी – आप काफी दुबली लग रही हैं।

माँ ने हँसकर ललिता सखी को एक गीत गाने को कहा। हम लोगों में से किसीने ललिता सखी से कहा – "माँ, तुम्हारे कीर्तन का नाम हम लोगों ने कलकत्ता में ही सुना था। आज हम लोगों को कीर्तन सुनाना ही पड़ेगा।"

ललिता सखी – माँ, तुम तो अन्तर्यामी हो, तुम तो जानती हो कि मैं गीत नहीं गा पाती।

कुछ देर सभी चुप रहे। माँ ने हम लोगों से कहा – "तुम लोग इनसे कुछ पूछना चाहो तो पूछ लो।"

ललिता सखी–माँ, मैं क्या बता सकता हूँ? मैं तो तुम्हारी पालतू चिड़िया हूँ। जो कुछ आपने सिखाया है वही केवल पढ़ देता हूँ।

माँ – जो लोग पढ़ना नहीं जानते, वे वही सुनना चाहते हैं।

हम लोगों के साथ एक स्वामीजी थे। आप माँ के भक्त हैं। विन्ध्याचल में आपका माँ से प्रथम परिचय हुआ और उसके बाद से आप माँ के भक्त बन गये। देहरादून भी आप माँ से मुलाकात करने गये थे। सुना कि आप विलायत गये थे।

स्वामीजी ने ललिता सखी से कहा – "हम लोगों की स्थिति देखते हुए आप उपदेश दें।"

मैंने सोचा कि प्रश्न ठीक किया गया है। एक ढेले में दो शिकार हो जायेंगे। उपदेश भी सुनने में आयेगा और हम लोगों की आन्तरिक स्थिति क्या है, यह जान लेने की शक्ति इनमें है या नहीं, यह भी ज्ञात हो जायगा। लेकिन ललिता सखी इस चक्कर में नहीं फँसे। अत्यन्त मृदु स्वर में उन्होंने कहा–"यह हृदय यन्त्र जबतक कोई नहीं बजाता तबतक नहीं बजता। अच्छे हाथ से यह यन्त्र अच्छी राग–रागिनी बजाता है।"

बात जम नहीं रही है, देखकर प्राणकुमार बाबूने कहा – "जीव का कौन सा उपाय है। कर्त्तव्य क्या है?"

ललिता सखी – जीव का कर्त्तव्य नहीं है। जैसे बच्चों का कर्त्तव्य है – पढ़ना–लिखना, पति का कर्त्तव्य है – पत्नी का भरणपोषण करना आदि भिन्न–भिन्न लोगों के लिए भिन्न–भिन्न कर्त्तव्य है। अवस्थानुसार कर्त्तव्य विभिन्न होने पर भी लोगों का एक साधारण कर्त्तव्य है वह है – आत्मचिन्ता, अर्थात् मैं कौन हूँ, कहाँ से आया? मेरा स्वरूप क्या है? इसी प्रकार की खोज करते हुए आत्मा को प्राप्त करने की चेष्टा करना चाहिए।

प्राणकुमार बाबू – कर्त्तव्यज्ञान होने पर सब होगा? कर्त्तव्य बुद्धि में जिसे ईप्सित समझूँगा, उसे प्राप्त करने में बाधा–विघ्न नहीं आयेगी?

ललिता सखी – बाधा–विघ्न तो आयेगी, क्योंकि हमारे सभी इन्द्रियगण बहिर्मुखी हैं। ये इन्द्रियाँ ही पग–पग पर बाधा उपस्थित करती हैं। जबतक ये अन्तर्मुखी नहीं होतीं तबतक बाधा देती रहेंगी। लेकिन हमारा प्रयत्न आन्तरिक हो तो इस दिशा में सहायता मिलती है। भगवान् ही हमारी सहायता करते हैं – अन्तर्यामी रूप में तथा गुरुरूप में। लेकिन हम परिश्रम करने को तैयार नहीं रहते। हम पहले मजदूरी चाहते हैं। लेकिन मार्ग तो विपरीत है। भगवान् ने कहा है –

यत्तदग्रे विषमिव परिणामेऽमृतोपमम्।
तत् सुखं सात्त्विकं प्रोक्तमात्मबुद्धि प्रसादजम्॥

हम कष्ट करने को राजी नहीं हैं और न कष्ट सहने की हममें शक्ति है। जब हमारी हालत यह है तब एक उपाय (माँ को दिखाते हुए) है, इस माँ रूपी जहाज में अपनी छोटी नाव बाँधकर निश्चित हो जाओ। कृपा की आशा में बैठे रहो। इससे अधिक क्या कहूँ? इस यन्त्र को माँ ने जितना बजाया, वही बजा। मुझे कुछ कहना नहीं है।

माँ – (ललिता सखी से) यह यंत्र अच्छा है, इसलिए बजता बढ़िया है (सभी हँस पड़े)।

ललिता सखी ने आगे कहा – हम लोग अपने को भगवान् के हाथ का खिलौना कहते हैं, लेकिन यह बात ठीक नहीं है। लकड़ी के खिलौने की कोई इच्छा नहीं होती। उसे लेकर जो मन में आये, वही किया जा सकता है, परन्तु हम लकड़ी के खिलौने की तरह अपने को समर्पण नहीं कर पाते। हम लोगों को वासना का खिलौना कहा जा सकता है।

धीरे–धीरे जनता की भीड़ बढ़ने लगी। हम लोगों के लिए आँगन में बैठने की व्यवस्था की गयी। बरामदे से उठकर हम लोग आँगन में जाकर बैठे। लगभग सौ से अधिक व्यक्तियों ने हमें चारों ओर से घेर लिया। इस बार हम ललिता सखी से जरा दूर हो गये। लेकिन उनकी बातें मजे में सुनाई देती रहीं।

पूर्वोक्त स्वामीजी ने ललिता सखी से गीता के 'सर्वधर्मान् परित्यज्य' श्लोक का अर्थ कहने के लिए कहा। ललिता सखी ने अत्यन्त सरल भाषा में उस श्लोक का अर्थ समझाया। उन्होंने कोई नयी बात नहीं कही, पर जो कुछ कहा, वह सुनने में अच्छा लगा।

उक्त श्लोक के अर्थ को बताते हुए उन्होंने कहा – "निष्काम भाव से देवज्ञान में जो कुछ पकड़ रखा जा सकता है, उससे अभीष्ट की प्राप्ति होती है। कुछ माँग कर सब नष्ट नहीं करना चाहिए। कामना–वासना आने पर सब गड़बड हो जाता है। स्वामी (पति) को देवता समझ कर पूजा करने पर परम अभीष्ट की प्राप्ति की जा सकती है। गृहस्थ इस रूप में धर्म प्राप्त कर सकते हैं। इस सम्बन्ध में एक कहानी है, उसे बता रहा हूँ।" एक सती साध्वी का पति कुष्ठ रोग से पीड़ित था। चूँकि पति को कुष्ठ रोग हो गया था, इसलिए कहीं एक जगह उसे रखकर उसकी पत्नी कहीं जा नहीं पाती थी। उसे डर लगा रहता था कि पशु–पक्षी आक्रमण न कर बैठें। पति को एक झाबा टोकरी में रखकर उसे सिर पर ले वह इधर–उधर जाती थी।

एक दिन उसका पति परमासुन्दरी वेश्या को देखकर मुग्ध हो उठा। रोग के कारण उसकी वासना की पूर्ति नहीं हो सकती थी, फिर भी उस वरांगना को पाने का लोभ उसे हुआ। लेकिन उसे पाने का कोई उपाय न देखकर वह मन-ही-मन दुखित रहने लगा। पत्नी अपने पति को उदास देखकर बार-बार उसके दुःख को जानने का प्रयत्न करने लगी। पति की वासना की पूर्ति करने के लिए वह वेश्या के घर दासी का कार्य करने लगी। इस प्रकार कुछ दिन बीत गये। वेश्या ने अपनी नयी दासी के कार्यों से प्रसन्न होकर उसे पुरस्कार देने के लिए उसकी इच्छा के सम्बन्ध में पूछा। सती नारी ने तब अपने पति की वासना का उल्लेख किया।

उसकी इच्छा को सुनकर वेश्या ने कहा – 'मैं पैसे के लिए इस शरीर के द्वारा अनेक लोगों की सेवा कर चुकी हूँ। आज अगर तुम्हारी जैसी सती की वासना पूर्ण कर सकी तो अपने को धन्य समझूँगी। तुम अपने पति को मेरे पास ले आओ।'

यह सुनकर सती सन्तुष्ट होकर अपने पति को वेश्या के घर ले आने के लिए गयी। ठीक इसी समय वैकुंठ में नारायण ने लक्ष्मी से कहा – 'मुझे अभी तुरंत मर्त्यलोक में जाना है। उसका कारण यह है कि एक सती जिस रूप में पति की सेवा करने जा रही है, उसे देखने के लिए मुझे सशरीर वहाँ उपस्थित रहना पड़ेगा।'

लक्ष्मी ने कहा – 'तुम अकेले क्यों जाओगे? मुझे भी ले चलो। मैं भी वहाँ मौजूद रहकर सती को पूर्ण सम्मान प्रदान करूँगी।'

नारायण के राजी होने पर दोनों ही वेश्या के घर आये। इधर देवाधिदेव महादेव भी कैलास से चलकर वेश्यालय में आने को तैयार हुए। इसका कारण जानने पर पार्वती ने महादेव से कहा – मेरा एक नाम सती है। अगर मैं सती को सम्मान नहीं दूँगी तो कौन देगा?'

फलतः उमापति भी उमा को साथ लेकर रवाना हुए। इधर ब्रह्मा और ब्रह्माणी भी उक्त वेश्या के घर चले आये। जिस वेश्या का घर नरक के बराबर था, आज वही सती की कृपा से स्वर्ग बन गया। कहने का मतलब निष्काम रूप से पति सेवा करके सती ने न केवल स्वयं ही नारायण आदि देवताओं का दर्शन किया, ऐसी बात नहीं है; बल्कि उसकी महिमा के कारण उसके पति और वेश्या का भी उद्धार हो गया।''

इसी प्रकार गपशप में शाम हो गयी। श्री श्री माँ ने साथ आई महिलाओं से कीर्तन करने को कहा। यतीश बाबू की बड़ी लड़की ने कीर्तन आरम्भ किया –

''श्रीकृष्ण चैतन्य प्रभु नित्यानन्द
हरे कृष्ण हरे राम श्री राधे गोविन्द।''

अन्य महिलाएँ साथ देने लगीं। काफी लोग खड़े होकर कीर्तन सुन रहे थे। भावावेश में आकर विमला माँ रोने लगीं। वे रोती हुई ललिता सखी से बोलीं–''माताजी, मुझे भक्ति दो, भक्ति दो।''

इस क्रन्दन को देखकर ललिता सखी के हृदय का आवेग बढ़ गया। उसे दमन करने के लिए वे बारंबार 'जय गुरु–जय गुरु' कहने लगीं। माँ को दिखाते हुए उन्होंने विमला माँ से कहा – जिनका अवलम्बन आपने किया है, वे आपको अपने पास बुला लेंगे। आगे कुछ करने की जरूरत नहीं।

विमला माँ आँसुओं की बरसात करती हुई माँ से कहने लगीं – 'माँ, तुम मुझे अपने पास बुला लो। मुझे बुला लो।'

इस क्रन्दन को देखकर सभी के हृदय व्याकुल हो उठे। लोगों की आँखें छलछला आयीं। लेकिन श्री श्री माँ शान्त और मुस्कुराती रहीं। संसार का कोई भी हास्य या रोदन उनके हिमाद्रि सदृश शान्त भाव को आलोड़ित नहीं कर पाता। वात्या विक्षुब्ध वारिधि के बीच

आलोक स्तम्भ की तरह माँ की स्निग्ध दृष्टि मानों सभी के ऊपर शुभाशीष का वर्षण कर रही थी। ललिता सखी तक विमला माँ के इस क्रन्दन को देखकर कुछ अधिक आश्चर्यान्वित हो गये थे।

बोले – "यह तो निरानन्द का जन्म नहीं है। देख रहा हूँ, आ गया है, आ गया।"

विमला माँ के अन्तर में भगवत् प्रेम के विकास का पूर्वाभास देखकर ही शायद उन्होंने ऐसा कहा। बाद में विमला माँ को सान्त्वना देने के लिए हँसते हुए बोले – "भय नहीं है। चिन्ता का कोई कारण नहीं है। इस आनन्दमयी का स्वभाव है कि आप रह–रहकर पीछे से खींचती हैं, आगे बढ़ने नहीं देतीं।"

अब हम चलने को तैयार हुए। माँ और विमला माँ को आगे करके हम लोग टहलते हुए धर्मशाला वापस लौटे। आज का दिन एक प्रकार के दिव्य भाव में व्यतीत हुआ। मुझे ऐसा अनुभव हुआ कि नवद्वीप में जो महाप्रभु का जन्मस्थान है, आकर मेरा जीवन धन्य हो गया। कृतज्ञता से मन भर उठा।

धर्मशाला में आकर हम लोग माँ को घेरकर बैठ गये। इधर–उधर की बातें होने लगीं।

माँ ने मुझसे पूछा – "गंगा से वापसी से समय तुमने कोई प्रश्न पूछा था?"

मैंने कहा – "माँ, जब किसी समय में भगवत् भाव विकसित होने लगता है तब उस विकास मार्ग में जितने विघ्न आते हैं, वे सब क्या साधना–जगत् के साधारण नियम से आते हैं या उसे व्यक्तिविशेष का दुर्भाग्य समझा जाय? उदाहरण के लिए निर्मला माँ में कितने सुन्दर भाव प्रकट हुए हैं, पर उनके विकास के मार्ग में पग–पग बाधाएँ आती जा रही हैं। तुम्हारे बारे में भी ऐसा ही हुआ था। तुम्हें बाबा भोलानाथ की ओर से बाधाएँ प्राप्त हुई थीं। इससे यह सन्देह होता है कि इस तरह की बाधाएँ आना इस मार्ग के नियम हैं।"

माँ – निर्मला माँ जिस प्रकार की बाधाएँ पा रही हैं, मेरे सम्बन्ध में भोलानाथ ने इस तरह की कोई बाधा नहीं डाली थी। पर इन विषयों की आलोचना करते समय इस शरीर (अर्थात् माँ) की चर्चा छोड़ दो।

इतना कहने के बाद माँ प्रश्न के बारे में बताने लगीं, लेकिन दो–चार बातें कहने के बाद कहने लगीं – "बात की कड़ी टूटती जा रही है। इस विषय की चर्चा फिलहाल छोड़ दो। रात जब गहरी हो जाय तब पूछना।"

निर्मला माँ के बारे में चर्चा करते हुए मैं कुछ तथ्य अपने अनजाने श्री श्री माँ की पूर्वावस्था की चर्चा कर बैठा। तुरत माँ ने आपत्ति की। इसके पहले भी देखा है कि जब कभी माँ की तुलना करते हुए कोई बात कहने गया तो माँ तुरत बाधा डालती हुई कहती हैं – "इन सब चर्चा में इस शरीर की बातें मत कहा करो।"

वास्तव में माँ के जीवन में जन्मावधि एक विशेषत्व है जो कि आज तक किसी भी महापुरुष के जीवन में देखने में नहीं आया है। जन्मावधि माँ की कोई शिक्षा–दीक्षा नहीं हुई है, साधना नहीं है, जबकि आध्यात्मिक जगत् की ऐसी कोई बात नहीं है जिसे माँ न जानती हों। आसन–मुद्रा, हठयोग, राजयोग आदि प्रत्येक प्रक्रिया माँ से छिपी नहीं है।

एक दिन माँ ने मुझसे कहा था–"ऐसा कोई आसन या मुद्रा नहीं है जिसे मैं नहीं जानती। कोई जब हठयोग का कोई भी आसन दिखाता है तभी मुझे लगता है कि वह मेरे शरीर के भीतर हो गया है।"

साधना की किसी अवस्था की चर्चा करने पर मां तुरंत कहती हैं – इस शरीर से न जाने कितनी अवस्थाएँ गुजर चुकी हैं, इसीलिए मैं समझ लेती हूँ कि यह कौन सी अवस्था (स्थिति) की बात है।"

जबकि यह सब अवस्था या यौगिक क्रियाएँ माँ की चेष्टालब्ध नहीं हैं। मानव शरीर में जिस प्रकार बाल्य, यौवन आदि अवस्थाएँ प्राकृतिक नियमानुसार स्वतः स्फुरित होती हैं, उसमें व्यक्तिगत कोई स्वातन्त्र्य नहीं रहता, माँ के जीवन की अभिव्यक्तियाँ भी उसी प्रकार की हैं। शायद इसीलिए माँ के जीवन का इतिवृत्त साधना–जगत् में एक विराट् विघटन है। इसी वजह से शायद माँ दूसरों के साथ अपनी तुलना करने को मना करती हैं? किंवा यही क्या माँ के अवतारत्व का इंगित है? समधर्मी वस्तुओं की तुलना होती है। जिस जगह प्रकृतिगत वैषम्य रहता है, वहाँ किस रूप में हो सकती है?

भगवान् पर विश्वास और भक्ति कैसे होती है?

हमारी चर्चा में बाधा आ जाने से एक सज्जन ने माँ से प्रश्न पूछा–"माँ, भगवान् के प्रति सहज ही भक्ति विश्वास कैसे होता है?"

माँ – भगवान् के प्रति भक्ति–विश्वास प्राप्त करने के लिए कर्म से एक लक्ष्य होना आवश्यक है। गुरु ने जो मार्ग दिखाया है, उसी मार्ग पर निर्विचार से चलते रहना चाहिए। गुरु द्वारा निर्धारित पथ पर चलते–चलते जितनी सहायता की आवश्यकता होती है, वह अपने आप प्राप्त हो जाती है। मन स्थिर नहीं हुआ समझकर खेद नहीं प्रकट करना चाहिए। मन अपना आहार न पाकर चंचल हो उठता है। मन को आहार दो, उसे पुष्ट बनाओ तब मन अपने आप शान्त हो जायगा। पूर्णानन्द ही मन का आहार है। मन उसी आनन्द की खोज में रहता है। जागतिक विभिन्न विषयों में मन आनन्द की तलाश में चक्कर काट रहा है, पर किसी प्रकार से पूर्णानन्द प्राप्त नहीं कर पा रहा है, इसलिए वह चंचल है। यह पूर्णानन्द हमारे स्वभाव में है और उसके आस्वाद से हम परिचित हैं, इसीलिए जागतिक खण्ड–खण्ड आनन्द उसे तृप्त नहीं कर पाता। मन को मैं बच्चा कहती हूँ। शिशु जैसे माँ को खोजता रहता है, माँ को बिना पाये शान्त नहीं होता, उसी प्रकार मन भी

माँ की तलाश में चक्कर काट रहा है। पूर्णानन्द ही उसकी माँ है। दूसरी ओर मन को मैं सबसे बड़ा साधक कहती हूँ। जिस प्रकार साधक अपना अभीष्ट बिना प्राप्त किये, तृप्त नहीं होता, अनवरत केवल अभीष्ट प्राप्त करने के लिए प्रयत्न करता रहता है, मन भी उसी प्रकार पूर्णानन्द प्राप्त करने के लिये व्याकुल रहता है। सद्भाव उसे पुष्ट करता है। अभ्यास के द्वारा मन शान्त होता है। घर–गृहस्थी के जो कार्य करते हो, करते रहो। उसे मैं बेकार नहीं कहती। लेकिन सर्वदा भगवान् के प्रति लक्ष्य रखना। इस लक्ष्य के रहने पर एक दिन परमार्थ प्राप्त कर लोगे। जैसे वृक्ष और छाया में सम्बन्ध है, उसी प्रकार 'सोऽहं' और 'अहं' का आपस में सम्बन्ध है। हमारा 'अहं' भी उसी 'सोऽहं' की छाया है। वृक्ष की छाया पकड़ कर जिस प्रकार उसकी जड़ तक पहुँचा जाता है, उसी प्रकार भगवान् के प्रति लक्ष्य स्थिर रखने पर जागतिक विषयों के बीच भगवान् को प्राप्त किया जा सकता है।

काफी देर तक माँ इसी मर्म का उपदेश देती रहीं।

आध्यात्मिक विकास मार्ग की बाधाएँ

रात गहरी हो जाने के बाद माँ ने मेरे पुराने प्रश्न का उत्थापन किया। मेरा प्रश्न था कि आध्यात्मिक विकास मार्ग में बाधाएँ क्यों आती हैं।

माँ कहने लगीं –"देखो, जब आग जलती है तब जितना उसे जलना है, वह जलेगी ही। उसे कोई रोक नहीं सकता। जब भगवत्–भाव प्रकट होकर साधक को कभी आनन्द और कभी क्लेश देता है तब किसी में इतना साहस नहीं है कि उसे रोक सके। कीर्तन सुनने पर साधक को यन्त्रणा होती है देखकर अधिकतर साधक को कीर्तन से दूर रखने का प्रयत्न किया जाता है, लेकिन उससे कोई लाभ नहीं होता, क्योंकि साधक में जब भगवत्–भाव प्रकट होने का समय आता है तब एक अचिंतनीय योगायोग से, उसके निकट कीर्तन या धर्म–

सम्बन्धी गायन आरम्भ हो जाता है और तब उस समय वह भाव के आवेग में डूबता–उतरता है। इन बातों को रोकना मनुष्य के साध्य की बात नहीं है। यहाँ यह पूछ सकते हो कि साधक को ऐसी हालत में कीर्तन से दूर क्यों रखने का प्रयत्न किया जाता है? कारण उससे उसकी आध्यात्मिक उन्नति में सहायक न होकर केवल अन्तराय की सृष्टि होती है। यहाँ यह स्मरण रखना होगा कि साधक जिसे इस प्रकार अपने आत्मीय–स्वजनों से बाधाएँ प्राप्त होती हैं, वह उसके पूर्व जन्म के संस्कार और कर्मफलों से प्राप्त होती हैं। साधक के संस्कार के अनुसार उसके आत्मीय–मित्र आदि आकर एकत्रित होते हैं। इनमें से कोई उसे बाधा तो कोई सहायता देता है। जैसे निर्मला माँ के बारे में तुम लोगों ने देखा कि अवनी पिताजी निर्मला माँ के भावों को जगाने के लिए कीर्तन करने लगे और पिताजी (अर्थात् आनन्द भाई) वह भाव न जागे, इस दिशा में सजग रहे। पिताजी माँ को बहुत चाहते हैं, इसीलिए उसके सामने कीर्तन करने देना नहीं चाहते। कारण कीर्तन होने पर माँ की यंत्रणा बढ़ जाती है। दूसरी ओर अवनी पिताजी माँ से श्रद्धा करते हैं, इसलिए कीर्तन करके माँ में भाव जागृत करने के लिए उत्सुक हो गये। यह सब पूर्व जन्म के संस्कारों से होते हैं।''

अब यह पूछ सकते हो कि कीर्तन सुनने पर माँ में इतनी यंत्रणा क्यों होती है? इसके उत्तर में कहना है कि यह तो हँसना–रोना, सुख–दुःख यह सब वासना से होता है। भगवान् का नाम सुनना अच्छा लगता है, यह भी एक प्रकार की वासना है, कल माँ (निर्मला माँ) को कहते नहीं सुना – ''इतना मधुर नाम सुनकर मैं रह नहीं पाती।'' नाम सुनने पर यंत्रणा होती है और दूसरी ओर बगैर सुने रहा नहीं जाता। जहाँ कामना–वासना है, वहीं सुख–दुःख है। इसी सुख–दुःख के भीतर समता प्राप्त करना चाहिए। जब तक समता नहीं आयेगी तब तक इसी प्रकार की ज्वाला–यंत्रणा होगी। इनकी जरूरत है। साधना के मार्ग में जो लोग अग्रसर होते हैं, उन लोगों को यह सब भोगना पड़ता है।

सृष्टि तत्त्व—ध्यान

मैं – माँ, प्रथम संस्कार कैसे आता है?

माँ – यह सब प्रश्न सृष्टि तत्त्व से सम्बन्धित हैं। तुम लोगों के भीतर सृष्टि, स्थिति, लय के संस्कार हैं, इसीलिए यह सब प्रश्न पैदा होते हैं। तुम लोग प्रत्येक कार्य कोई न कोई उद्देश्य लेकर करते हो, इसीलिए भगवान् पर अपना उद्देश्य थोपते हो । परमतत्त्व में यह कुछ नहीं है । इसी वजह से वेदान्तिक इन सबको माया कहते हैं ।

त्रिगुणा बाबू–'माँ, क्या ध्यान बढ़ाना उचित है ?'

माँ–हाँ, इससे एकाग्रता बढ़ती है और ध्यान लेकर रहते रहते ध्यान चला जाता है । बाद में जो शेष रहता है, उसे भाषा के द्वारा व्यक्त नहीं किया जा सकता ।

मैं–ध्यान से अगर एकाग्रता बढ़ती है तो जागतिक विषयों को लेकर ध्यान किया जा सकता है ?

माँ–जागतिक विषयों को लेकर ध्यान करने पर उससे एकाग्रता अवश्य आती है, पर इस तरह के ध्यान बन्धन के कारण होते हैं। सत् वस्तु के ध्यान से बन्धन खण्डित होता है ।

रात के साढ़े तीन बज जाने के कारण मैं सोने चला गया ।

३० दिसम्बर, सन् १९३६ ई., बुधवार । आज सवेरे माँ के पास आकर देखा–उनका कमरा बन्द है । सुना कि कुछ लोग माँ से गोपनीय बातें करने के लिए घर के भीतर हैं । बाहर भी बहुत से लोग माँ के दर्शन करने के लिए खड़े हैं । आज कुछ नये चेहरे देखने में आये । इनमें कुछ मनीपुरी बालक हैं । काफी देर हो जाने पर मैंने खिड़की से झाँककर देखा–भीतर माँ अखण्डानन्दजी तथा खुकुनी दीदी से बातें कर रही हैं । मुझे लगा कि माँ सम्भवतः विन्ध्याचल के यज्ञकुण्ड के बाबत कुछ कह रही हैं । सुना था कि विन्ध्याचल

के यज्ञकुण्ड में कुछ दोष हो गये हैं । इस बारे में विचार विमर्श करने के लिए स्वामीजी विन्ध्याचल से आये हैं । माँ का दरवाजा देर से खुलेगा समझकर मैं कुछ देर के लिए अन्यत्र चला गया ।

गोपनीय बातें समाप्त होने के बाद माँ के पास जाकर बैठा । माँ भोलानाथजी की बीमारी के बारे में बता रही थीं । ४–५ महीना पहले भोलानाथजी इलाज के लिए कलकत्ता आये थे । यतीश बाबू के यहाँ डा. डेनाम ह्वाइट ने आकर भोलानाथ की जांच की थी । माँ को भी वहीं लाया गया था । यतीश बाबू के ठाकुर घर में माँ प्रतीक्षा कर रही थीं । डेनाम ह्वाइट माँ को देखकर खूब प्रसन्न हुए थे । उन्होंने कहा था–"आज तक इस तरह हँसते मैंने किसी को नहीं देखा था।"

माँ सभी को प्रसाद वितरण कर रही थीं । डेनाम ह्वाइट भी माँ के सामने मुँह खोलकर खड़े हो गये थे । माँ ने उनके मुँह में सन्देश डाला था ।

पुरुषकार और कृपा

कुछ देर के बाद नीरद बाबू ने प्रश्न किया–"माँ, साधना में चेष्टा का साध्य कितना और कृपा कितनी होती है ?"

माँ – जबतक तुम लोगों में शक्ति है तबतक तुम लोगों को कर्म करना ही पड़ेगा । दुनिया के दस विषयों को लेकर जिस तरह कर्म कर रहे हो उसी प्रकार धर्म के बारे में कर्म करना । पर यह स्मरण रखना कि धर्म के सम्बन्ध में जितने कार्य हो रहे हैं, वह सब अज्ञान पूर्ण है और यह कार्य भी वही करवा ले रहे हैं । लेकिन इस तरह कर्म करते–करते लोग अपनी शक्ति की असारता समझ पायेंगे । अपना करणीय कुछ भी नहीं है, यह ज्ञान होते ही आत्मसमर्पण होता है और तब भगवान् के प्रति निर्भरता आती है । उस समय भी कर्म का अन्त नहीं होता । उस समय ज्ञान का कर्म चलता रहता है । तब समझ में

आता है कि वे ही सब करा रहे हैं । इस अवस्था में भी अहंज्ञान रहता है इसीलिए कर्म कहा जा रहा है । इस अवस्था में जो कर्म होता है, वही पुरुषकार है । यही परम पुरुष का कर्म है ।

मैं–माँ, तुम साधना कहाँ समाप्त करोगी ? ज्ञान लाभ हुआ, आत्म समर्पण हो गया, फिर भी कर्म समाप्त नहीं हुआ । साधना या कर्म का अन्त कहाँ है ?

माँ–युगल मिलन में ।

इस उत्तर पर बहुत से लोग हँस पड़े ।

मैं–माँ, मैं पुरुषकार के बारे में हुई बातों को ठीक से समझ नहीं सका । हम लोग जब भगवान् को प्राप्त करने के लिए आप्राण प्रयत्न करते हैं क्या वही पुरुषकार है या जब हम लोग प्रयत्न करते–करते आत्मशक्ति के प्रति विश्वास खोकर, भगवत् कृपा की आशा में कर्म त्याग करें, वही पुरुषकार है ? स्रोत के विपरीत उजान की ओर बढ़ना ही क्या पुरुषकार है ? या स्रोत में अपने को छोड़ देना पुरुषकार है ?

माँ–जब स्रोत में अपने आपको छोड़ देते हो तभी वास्तविक पुरुषकार की अवस्था होती है । उस समय जो कर्म होते हैं वे ही परम पुरुष के कर्म हैं, ज्ञान के कर्म हैं । इसके पूर्व जितने कर्म होते हैं, वे सब अज्ञानता के कर्म हैं ।

मैं–साधना कब समाप्त होगी ?

माँ–युगल–मिलन में वेदान्त[1] होने पर ।

इसी समय खुकुनी दीदी ने माँ से कहा–'माँ, कुछ देर पहले कृष्णलीला के बारे में बताती रहीं । माँ ने कहा था कि इस कृष्णलीला

१. यह शब्द बाद में माँ की बातों में व्याख्यात हुआ है ।

से मतलब है कि कभी ये सब बद्ध थे, बाद में मुक्त हुए हैं । इसके के बारे में जीवन्मुक्त पुरुष सुनने के अधिकारी नहीं हैं । कारण 'मुक्त' से ऊपर जो लोग हैं केवल वे ही लोग कृष्णलीला सुनने और बूझने के अधिकारी हैं । वेदान्त समाप्त होने पर कृष्णलीला आरम्भ होती है । इसे भाषा के माध्यम से प्रगट नहीं किया जा सकता । इस लीला में एक मात्र पुरुष होते हैं । वे ही राधा, वे ही गोपी और वे ही चरवाहा । एक ही कृष्ण नाना प्रकार से अपने को संभोग कर रहे हैं ''

मुझे ऐसा लगा कि कृष्णलीला के बारे में समझना मेरे लिए विडम्बना मात्र है, इसीलिए इस बारे में माँ से कोई प्रश्न नहीं किया । माँ से मैंने पूछा–''माँ पुरुषकार तो समझ गया अब कृपा क्या है, यह बताओ ।''

माँ–कृपा है–पूर्वाजन्मार्जित कर्मफल । पूर्व जन्म में जितने सत्कार्य कर चुके हो वही इस जन्म में कृपा रूप में तुम्हारे पास आ रहे हैं ।

मैं–अगर वे सब मेरे कर्मफल हैं तब तो वह मेरा प्राप्यधन है मेरी मजदूरी है ।

माँ–वह तुम्हारा प्राप्य अवश्य है, पर तुम इसे नहीं जानते इसीलिए उसे कृपा समझते हो । इसके अलावा साधक साधना करते–करते एक ऐसी अवस्था प्राप्त कर लेता है जब सब कुछ उसके निकट कृपा ज्ञात होता है । जगत् में जो कुछ हो रहा है, वह सब भगवान् की कृपा से हो रहा है । उसमें साध्य–साधन कुछ नहीं है । यही कृपा की स्थिति है । इसके बाद जो स्थिति आती है, उसमें कृपा नहीं है । उस वक्त एक तत्व ही रहता है । कौन किस पर कृपा करेगा ?

माँ ने जिस ढंग से पुरुषकार की व्याख्या की उससे यह लगा कि वह एक ही स्थिति की दो दिशाएँ हैं । एक ओर से देखने पर जो पुरुषकार लगता है, दूसरी ओर से वही कृपा मालूम पड़ती है ।

भगवान् प्राप्ति की आशा में ध्यान–धारणा इत्यादि कर्म जिसे हम पुरुषकार कहते हैं, उन सबको माँ अज्ञान कर्म कहती हैं । लेकिन इस तरह का कार्य करते–करते साधक जब अपनी क्षुद्रता उपलब्धि करके विराट के निकट शरणापन्न होते हैं तभी प्रकृत पुरुषकार आरम्भ होता है अर्थात् उस समय साधक देखता है कि एक परमपुरुष की इच्छा से संसार के सभी कार्य सम्पन्न हो रहे हैं । यही दूसरी ओर कृपा की अवस्था है । कारण तब साधक समझ लेता है कि विश्वपति की कृपा के अलावा जगत में कुछ नहीं हो सकता । इस स्थिति में अहंज्ञान रहता है, इसलिए शायद इसे कृपा की स्थिति कहा जाता है । अहंज्ञान का जब लोप हो जाता है और तब जो रह जाता है वही अव्यक्त और परमतत्व है ।

आज कई दिनों से विमला माँ आद्यापीठ वापस जाने के लिए व्यग्र हो गयी हैं । माँ के भोग के समय विमला माँ ने बड़े आग्रह के साथ माँ से विदा देने की प्रार्थना करने लगीं । माँ बराबर बाधा देती गयीं । विमला रोने के स्वर में बोली–'माँ, तुम यह समझ नहीं रही हो, मुझे यहाँ रहने में काफी कष्ट हो रहा है । मेरी छाती फटी जा रही है । अब मुझसे सहा नहीं जो रहा है ।'

माँ ने कहा–"आज रुक जाओ । कल अगर जाना चाहोगी तो तुम्हें बाधा नहीं दूँगी ।"

विमला माँ बेमन से राजी हुई । उनकी आकृति पर दर्द की लकीरें बनी रहीं । तीसरे पहर माँ विमला माँ आदि को लेकर गंगा में घूमने गयीं । श्रीयुक्त विनय भूषण सेन महाशय को भी माँ ने सपत्नीक नाव पर आने को कहा है । आज वे लोग कलकत्ता चले जायेंगे । नाव पर माँ ने उन लोगों को कुछ उपदेश दिये ।